हज़ारों साल की निसर्गशाला

आमोद कारखानीस

अक्सर स्कूल में जब गणित से पाला पड़ता है तो कई लोगों के मन में यह सवाल स्वाभाविक रूप से उठता होगा कि आखिर गणित को किसने बनाया। जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग,लघुत्तम समापवर्तक से लेकर त्रिकोणमिति, केल्कुलस तक गणित फैला हुआ है। सारा गणित न तो एक दिन में इस रूप में उभर आया, न ही गणित किसी एक व्यक्ति या एक संस्कृति या एक देश-विशेष की देन है। साझा सहयोग से और एक-दूसरे के साथ शेयरिंग से ही गणित इतने परिष्कृत रूप में विकसित हुआ है।

फिर भी एक सवाल तो मन में उठता ही होगा कि प्राक-ऐतिहासिक समय में जब इन्सान शिकार और खाद्य पदार्थ बटोरकर अपना गुज़ारा कर रहे थे, क्या उस समय भी इन्सान के पास गणित हुआ करता था। इसका जवाब होगा, “हाँ, ज़रूर।” लेकिन सम्भवत: उनका गणित उनकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिहाज़ से उपजा था।

प्रत्यक्ष साक्ष्यों एवं ठोस सबूतों के अभाव में यह कह पाना कठिन है कि एक लाख साल पहले इन्सान को किस तरह का गणित यकीनी तौर पर आता ही होगा। ऐसे हालात में लेखन में अक्सर कल्पनाशीलता का सहारा लेकर कुछ प्रसंगों-घटनाओं का ऐसा ताना-बाना बुना जाता है कि कथानक के सहारे लेखक अपनी बात को समझा पाए। इस कल्पनाशीलता की वजह से पाठकों को कई बार ऐसा लग सकता है कि वास्तव में बिलकुल ऐसा ही हुआ होगा परन्तु उस अर्थ में ये सच्ची कहानियाँ नहीं हैं।

परन्तु दूसरी ओर यह भी सही है कि इन लेखों में जिन घटनाओं का ज़िक्र किया गया है, वे पूर्णत: काल्पनिक नहीं हैं और किसी-न-किसी ऐतिहासिक तथ्य व प्रमाण पर आधारित हैं। इस श्रृंखला का उद्‌देश्य आपको इस तथ्य से रूबरू कराना है कि गणित किन विविध पड़ावों से गुज़रता हुआ आज हमारे पास पहुँचा है, साथ ही, यह समझाने का प्रयास भी है कि

गणित का तत्कालीन समाज पर और सामाजिक परिस्थितियों का गणित पर किस तरह से प्रभाव रहा है। उम्मीद है कि आप इस लेख श्रृंखला को इसी भावना के साथ पढ़ेंगे।

इस लेख की पहली किश्त में इन्सान के घुम्मकड़ जीवन से शुरुआत की गई है। कुछ शिकार, कुछ फल-कन्द-बीज-शहद बटोरना, उस समय का सामूहिक जीवन और मनोरंजन – ऐसे ही कुछ दृश्य इसमें शामिल हैं। धीरे-धीरे इन्सान ने संख्या, मापन, आकार, पैटर्न को समझना शुरू किया जो आगे चलकर गणित की जटिल अवधारणाओं की नींव बने। तो, इस लेख श्रृंखला में हम गणित के ऐसे ही कुछ रोचक किस्सों और गणित की यात्रा के बारे में पढ़ेंगे।

प्राक्-ऐतिहासिक समय की बात है, यानी लगभग 100 से 200 हज़ार साल पुरानी। अभी इन्सान ने धरती पर अपना वर्चस्व स्थापित नहीं किया था। वो भी अन्य प्राणियों की तरह जीवन की मूलभूत ज़रूरतों के लिए संघर्षरत था। इसी दौर में अमेज़न के घने जंगलों में 15-20 आदिमानवों का एक समूह रास्ता बनाकर, सावधानीपूर्वक आगे बढ़ता जा रहा था। तभी, आगे शिकार के लिए जानवर की तलाश करने गया एक युवा दौड़ता हुआ आता है।

"उधर जंगल में एक बड़ा-सा जानवर चारा खा रहा है।" वह यह बात इशारे से बताता है। वजह साफ है कि शिकार के समय ज़ोरों से बात नहीं करनी है और दूसरी बात, अभी तक भाषा भी शायद पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई थी।

जिस प्राणी का शिकार करना था, वो खासा विशाल था। उस पर यदि सुनियोजित तरीके से हमला नहीं किया तो वह दो-चार आदिमानवों को घायल करके भाग जाएगा। इसलिए उस प्राणी के शिकार की योजना ठीक से ही बनानी चाहिए। सभी लोग अपने हथियार लेकर शिकार के लिए तत्पर हो जाते हैं। समूह में 40-45 साल का एक व्यक्ति उनका मुखिया है। उसे शिकार और इस जंगल का अच्छा खासा अनुभव है। तत्परता से उसने शिकार के सभी सूत्र अपने हाथों में ले लिए।

मुखिया रणनीति बनाते हुए सोचना शुरू करता है कि बाईं ओर एक झरना है इसलिए वह प्राणी उस ओर तो नहीं जाएगा। इस वजह से उस तरफ ज़्यादा लोगों की ज़रूरत नहीं होगी। लेकिन किसी भी तरह उसे दाहिनी तरफ के जंगल में घुसने नहीं देना है। इसलिए वहाँ प्राणी को भाले

से रोकने वाले और शोर-गुल करने के लिए ज़्यादा लोग रखने होंगे। इसके अलावा सबसे अनुभवी तीन-चार लोग सामने से हमला करेंगे। ऐसे आक्रमण करना खतरनाक है फिर भी शिकार करने के लिए सामने से हमला करके प्राणी की छाती में भाला घुसेड़ना ज़रूरी है। तो इस तरह से योजना बन गई।

"उनी उकुसर यानी तुम दो लोग पीछे से जाओ।"

"उकुसर-उकुसर-उकुसर दाहिनी ओर।"

"तुम उरापोन-उकुसर बाईं ओर।"

उपरोक्त संवाद में 'उरापोन यानी एक', 'उकुसर यानी दो'। इससे बड़ी संख्या के लिए कोई शब्द ही नहीं होता था। यदि 4 या 6 कहना हो तो दो बार या तीन बार उकुसर कहना होता था। 3 कहने के लिए एक जमा दो यानी उरोपोन उकुसर कहना होगा।

आदि-मानवों की भाषा में अभी बड़ी संख्याओं के लिए पर्याप्त शब्द नहीं थे। लेकिन अब उनकी ज़रूरत को शिद्दत से महसूस किया जा रहा था और यही शायद मानसिक विकास की पहली सीढ़ी भी थी।

* * *

इन्सान अभी भी खानाबदोश या घुम्मकड़ जीवन जी रहा है। ऊपर से बारिश के दिन। चार फुट की दूरी के पार भी देख पाना मुश्किल, इतनी घनी झाड़ियाँ और दरख्त थे - ऐसे समय शिकार करना तो दूर की बात, जंगल में और अधिक भीतर जाना भी

जोखिम भरा था। कब और कहाँ कोई वन्यजीव आप पर हमला कर देगा, पता भी नहीं चलेगा। ऐसे में भोजन के लिए शिकार के अलावा कुछ और खोजना चाहिए। बारिश में जंगल में पत्ते एवं कन्द-मूल बड़ी तादाद में उपलब्ध हैं और घुम्मकड़ी की वजह से इन्सान यह जानता है, और इस बात का अन्दाज़ भी है कि ये कहाँ मिल जाएँगे। कुछ लोगों ने सुबह-सुबह ही जंगल में घूमते हुए पाँच-छह बड़े कन्द खोद निकाले हैं। अब खाने के लिए इन कन्दों को पत्थर के चाकू से काटकर टुकड़े करना और पकाना है। इस दौर तक भोजन पकाने की खोज भी हो चुकी थी। जो कुछ भी खाद्य सामग्री मिलेगी, उसे समूह में बराबर-बराबर बाँटना, यह समूह का नियम था।

अब यदि सबके बीच समान-समान बाँटना है तो समूह में कितने लोग हैं और हरेक को कितने-कितने टुकड़े मिलेंगे, इसका भी अन्दाज़ा लगाना आना चाहिए। यह शायद भाग देने की क्रिया की शुरुआत थी।

जंगलों में रहने वाले हमारे पुरखों के जीने के तौर-तरीके एकदम बुनियादी थे फिर भी उन्हें अब गणित की विविध संकल्पनाओं की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। इन ज़रूरतों की वजह से गणित की संकल्पनाएँ जाने-अनजाने इन्सान की ज़िन्दगी में आहिस्ता-आहिस्ता दाखिल होती चली गईं।

* * *

जिसे आज हम सुहाने दिन कहते हैं यानी खास तौर पर ठण्ड के दिन। अब जंगल में भी मौसम बदल गया है। बरसात का मौसम समाप्त होकर हल्की ठण्डक महसूस हो रही है। जंगल में पतझड़ के पीले-लाल रंग के दरख्त और फूलों-फलों से लदे हुए पेड़, यहाँ तक कि गूलर, अंजीर जैसे कई पेड़ तो फलों से झुके जा रहे हैं। इस समय बाहर निकलकर शिकार करना भी आसान है।

ऐसी पृष्ठभूमि में हमारे पुरखों ने शाम को भरपेट भोजन किया है और गुफा के बाहर गरमाहट के लिए अलाव भी जलाया गया है। किसी ने खोखले लकड़ी के तने पर जानवर की खाल चढ़ाकर तैयार किए साज पर हाथों की थाप देकर धा, धिन, धिन.. की आवाज़ निकाली। इस आवाज़ के साथ समूह के लोग एक-दूसरे की कमर पर हाथ रखकर नृत्य की शुरुआत करते हैं। एक लय में कदम आगे-पीछे होते हैं – एक, एक-दो, एक-दो-तीन, फिर तीन-दो-एक, दो-एक, और एक - पाँव फिर से शुरुआती बिन्दु पर आ जाते हैं।

इस तरह संख्याएँ, अंक, गणित की क्रियाएँ, गणितीय पैटर्न और ऐसी कई अन्य अमूर्त संकल्पनाएँ बिना दस्तक दिए इन्सानी ज़िन्दगी में दाखिल होती चली गईं।

* * *

इन तीन किस्सों को देखते हुए समझ में आता है कि इन्सानी ज़िन्दगी में गणित ने प्रवेश कर लिया था। उसे संख्याओं की, गिनने की, समूह बनाने की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। यही लोग आधुनिक गणित के पूर्वज थे। आज भी हम गणित की शुरुआत एक-दो-तीन गिनने से ही करते हैं और फिर सहजता से मुझे दो रोटी परोसो, मुझे एक नया ड्रेस चाहिए – इस तरह के वाक्य बोलने लगते हैं। खेलते हुए टीम या समूह बनाने के लिए बच्चों की गिनती करते हैं और विविध खेलों में भी सहजता के साथ गणित का इस्तेमाल करते हैं। स्कूल जाने के बाद हमारी गणित नामक औपचारिक विषय से मुलाकात होती है। इस विषय में पहाड़े याद करना, भिन्न समझना, लघुत्तम समापवर्तक, महत्तम समापवर्तक मालूम करना आदि में हम गोते लगाते रहते हैं। स्कूल में हमारी गणित में तरक्की कैसी भी हो तब भी हमें सब्ज़ीवाले से मोलभाव करके सही हिसाब करना तो आ ही जाता है। दसवीं कक्षा के बाद गणित से छुटकारा मिलने का एक एहसास ज़रूर बनता है लेकिन कॉलेज के दाखिले के समय कितने प्रतिशत अंक चाहिए, नौकरी में कितना वेतन होगा, कितने प्रतिशत मँहगाई भत्ता मिलता है – ऐसे कई मुद्दों के बारे में तो चर्चा होती ही है। इसी तरह हमारे मनपसन्द खेल क्रिकेट में रनों का औसत, या सरकार का जीएसटी बढ़ाना लाभदायक है या घाटे का सौदा, इस पर भी हम अपने

विचार व्यक्त करते ही हैं। कुल मिलाकर गणित हमारा पीछा नहीं छोड़ता।

इन्सानी ज़िन्दगी में संख्याएँ या गणित कब और कैसे दाखिल हुआ होगा? इसकी शुरुआत कैसे हुई होगी, तब कौन-से स्कूल हुआ करते थे? फिर किसने सिखाया होगा, इस गणित को? ऐसे ही कई सवाल आपके मन में उठने लगे होंगे।

चलिए, देखने की कोशिश करते हैं कि पक्के तौर पर क्या-क्या हुआ होगा और किस तरह घटित हुआ होगा।

...जारी

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: प्रभाकर डबराल: पेशे से चित्रकार, प्रकृति प्रेमी, कहानीकार और डिज़ाइन शिक्षक हैं। लोगों की उत्पत्ति की कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द करते हैं। स्वतंत्र चित्रकारी करते हैं। समानुभूति, करुणा और आत्म-साक्षात्कार फैलाने में सहायक बनकर अपने जीवन को जीने लायक बनाना चाहते हैं।

सभी चित्र मध्यभारत में गुफाओं में पाए जाने वाले शैलचित्रों की प्रतिकृतियाँ हैं।

सन्दर्भ:

• *अफ्रीका एंड मेथमेटिक्स,* दिर्क ह्यूलेब्रुक, प्रकाशक - स्प्रिंगर, 2019.